स्वातंत्र्योत्तर भारत के युग प्रवर्तक डॉ. अम्बेडकर के दलित समर्थक समाज-दर्शन का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

प्रो. शिव कुमार भनोत

स्वातंत्र्योत्तर भारत के राजनीतिक एवं सामाजिक जीवन को दर्शन की जिन धाराओं ने सर्वाधिक प्रभावित किया उनमें से प्रमुख था, डॉ. अम्बेडकर प्रवर्तित दलित समर्थक समाज-दर्शन। स्वतंत्र भारत के राजनीतिक और सामाजिक जनजीवन और समग्र ताने-बाने को इस दर्शन ने न केवल प्रभावित ही किया वरन् अनेक रूपों में उद्वेलित और आंदोलित भी किया। इस समाज-दर्शन ने राष्ट्र के दलित समाज में चेतना जागृत करने और उनमें सम्मान, स्वतंत्रता, समानता, न्याय, एकता और भ्रातृत्व भाव की स्फुरणा जगाने व उनमें अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने की अलख जगाई। स्वतंत्र भारत में इस समाज-दर्शन का द्रुत गति से पुष्पवित एवं पल्लवित होना जितना अधिक महत्त्वपूर्ण है उतना ही महत्त्वपूर्ण है इस दलित समर्थक समाज-दर्शन के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य का शोधपरक अध्ययन। अतएव प्रस्तुत शोध-पत्र एतद्विषयक शोधपरक अध्ययन पर केन्द्रित है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर का सामाजिक-मानवतावादी राजनीतिक एवं सामाजिक चिंतन जिन सिद्धांतों पर आधारित है वह है - मानव सम्मान, स्वतंत्रता, समानता, सत्य, न्याय, एकता, भ्रातृत्व और प्रजातंत्र। अन्याय, घृणा, जातिवाद, छुआछूत, हिंसा के वे घोर विरोधी रहे। इन आधारशिलाओं पर टिका डॉ. अम्बेडकर का चिन्तन किसी नितान्त शांत अथवा निर्जन स्थान पर बैठकर किया गया कोई निर्लिप्त भावयुक्त चिन्तन नहीं है वरन् इसकी जड़ें समसामयिक सामाजिक-सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों में अंतर्निहित हैं।

उनका यह चिंतन यथार्थ के कठोर धरातल से उपजा एक व्यावहारिक चिन्तन है। जब उन्होंने अछूत और शूद्रों की दु:खभरी गाथाओं को सुना, उनकी दुर्दशा को अपनी आंखों से देखा, उनकी अमानवीय स्थितियों के सम्बन्ध में पढ़ा, सुना और उनका अवलोकन किया तब उनका मानव हृदय विचलित हो उठा। इन्हीं सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक विकृतियों और विसंगतियों से युक्त परिस्थितियों ने डॉ. अम्बेडकर के समाज-दर्शन को जन्म दिया। इनसे ही उनके आर्थिक, राजनीतिक, नैतिक एवं धार्मिक विचारों का

प्रादुर्भाव एवं तदनन्तर विकास हुआ।

तद्विषयक अध्ययन के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि हम ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में उस सामाजिक और धार्मिक पृष्ठभूमि का सूक्ष्म विवेचन करें जिसने डॉ. अम्बेडकर को वैचारिक दृष्टि से उद्वेलित कर दिया और उससे उपजा वह सामाजिक और राजनीतिक दर्शन जो मानव अधिकारों को सामान्य लोगों के लिए सुलभ बनाने का सशक्त पक्षधर था। भारतवर्ष के प्राचीनकाल में बहुत ही प्रभावी ढंग से अस्तित्वमान रही 'वर्ण-व्यवस्था' के मूल में जाने पर विदित होता है कि ऋग्वेद के 'पुरुष सूक्त' में कहा गया है कि सृष्टि की समृद्धि के लिए ब्रह्मा ने अपने मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्रों को उत्पन्न किया अर्थात् ब्रह्मा ने मानव जाति को चार वर्णों में विभक्त कर दिया।[1]

प्रत्येक वर्ण का कार्यक्षेत्र पृथक-पृथक निर्धारित किया गया और तद्नुरूप प्रत्येक वर्ण कर्त्तव्य-पालन में संलग्न रहकर लाभान्वित होता था।[2] हिन्दू समाज में सदैव कर्त्तव्य पालन और श्रम विभाजन पर बल दिया गया।[3] अधिकारों की माँग को प्रोत्साहित नहीं किया गया। भारतीय दार्शनिकों ने भी इसका समर्थन किया है।[4] इसकी एक व्यावहारिक दुष्क्रियान्विति यह देखने में आई कि बिना योग्यता, विद्वता और कार्यकुशलता के भी ब्राह्मण-पुत्र जन्म के आधार पर ब्राह्मण ही माना गया।[5] इस वर्ण व्यवस्था ने ऊँच-नीच की भावना, शोषण, असमानता और अत्याचार जैसी सामाजिक बुराइयों को संरक्षण प्रदान किया[6] जिसका सीधा प्रभाव निम्न कहे जाने वाले वर्गों पर पड़ा। अछूतों और शूद्रों की स्थिति पशुओं से भी बदतर हो गई। जब पूरा सामाजिक ताना-बाना अनेक विकृतियों और विसंगतियों से बुरी तरह त्रस्त और बोझिल हो गया तब छठी शताब्दी ईसा पूर्व में महावीर स्वामी और महात्मा बुद्ध ने क्रमशः जैन और बौद्ध धर्म का प्रवर्तन कर परम्परावादी सामाजिक ढांचे के विरुद्ध आवाज उठाई। उन्होंने 'मानव एकता एवं भ्रातृत्व' पर बल दिया।[7]

सम्पूर्ण हिन्दू धर्म के प्रति उन्होंने एक सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया। प्रचलित ब्राह्मणवाद और पुरोहितवाद के विरुद्ध आंदोलन किए और उनकी अनुचित प्रभुसत्ता का महल इन महा मानवप्रेमियों ने हिला कर रख दिया।[8] इससे उस दीन, हीन, दलित और निःसहाय वर्ग को सांत्वना मिली जो हिन्दू समाज में प्रचलित दोषपूर्ण व्यवस्थाओं से दुखी था।

सामाजिक आंदोलन की दृष्टि से जैन धर्म की तुलना में बौद्ध धर्म ने अधिक सक्रियता दर्शाई। बौद्ध धर्म का उद्देश्य उस समय विद्यमान हिन्दू धर्म के कतिपय हठधर्मियों

की हठधर्मिता एवं सामाजिक अन्याय का अंत करना था।[9] बुद्ध का आंदोलन मात्र निषेधात्मक ही नहीं था, वरन् उन्होंने एक नवीन समाज का निर्माण किया जिसमें सभी मनुष्य समानता एवं स्वतंत्रता के अधिकारी थे।[10] वे प्रचलित हिन्दू समाज-व्यवस्था के कट्टर विरोधी थे। सैद्धांतिक रूप से, उन्होंने सम्पूर्ण हिन्दू धर्म को ही चुनौती दे डाली।[11] परन्तु, बुद्ध द्वारा शुरू किया गया यह आंदोलन जिस तेजी से अपनी परवान चढ़ा, उनकी मृत्यु के बाद उसी गति से शैथिल्य की ओर अग्रसर होता दिखाई दिया। परिणामतः शूद्रों, अछूतों और दलितों का सामाजिक इतिहास दुखों की एक अन्तहीन पहेली ही बनता गया।

मध्यकाल में जब इस्लाम ने भारत में प्रवेश किया तो एक नए सामाजिक एवं धार्मिक दौर की शुरूआत हुई। स्वतंत्रता और समानता के पृष्ठपोषक इस्लाम ने भारतीय समाज के प्रत्येक पहलू को प्रभावित किया।[12] परन्तु, इस्लाम भी भारतीय जनजीवन में कोई प्रगतिशील परिवर्तन नहीं ला पाया। इस्लाम के आगमन से जात-पांत और छुआछूत जैसी सामाजिक बुराइयां और अधिक बलवती हो गईं। सच तो यह है कि इस्लाम भी भारतीय जातिवाद के शिकंजे में फंस गया।[13] धर्म और राजनीति की समग्रता, मुस्लिम समाज की एक विशेषता है।[14] अतः मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं व बौद्धों को बलपूर्वक अपने समाज में मिलाया। करोड़ों शूद्र, अछूत और दलित तलवार के बल पर मुसलमान बना लिए गए। उनकी स्थिति भी अच्छी नहीं थी। शूद्र, अछूत और दलित वैसे ही रहे जैसे कि वह पहले थे। उनकी दशा में कोई सकारात्मक सुधार नहीं आया। तदनन्तर चले भक्ति आंदोलन के दौर में प्रचलित सामाजिक बुराइयों - ऊँच-नीच, छुआछूत आदि का विरोध किया गया।[15] भक्ति संतों[16] ने सामाजिक वैषम्य और बुराइयों के खिलाफ अपनी आवाज उठाई परन्तु, दलितों की दशा में कोई मौलिक सुधार नहीं आया। इनकी परछाई से भी परहेज किया जाता था। इन्हें गाँव-नगर से बाहर रखा जाता था, वे दूध-दही देने वाले पशु नहीं रख सकते थे और उनके लिए शिक्षा के द्वार बंद थे।[17]

अंग्रेजों के आगमन के साथ ईसाई मिशनरी ने इन्हीं परिस्थितियों में देश में प्रवेश किया। सामान्यतः सभी वर्गों की दशाएं इस समय बहुत कुछ बिगड़ चुकी थीं।[18] ईसाई धर्म प्रचारकों ने आह्वान किया कि ईसा का धर्म प्रेम एवं सद्भावना, भ्रातृत्व एवं प्रजातंत्र, समानता एवं स्वतंत्रता पर आधारित है। इस धर्म में सभी लोगों को समान अधिकार दिए जाते हैं और सबका सम्मान किया जाता है।[19] बड़ी संख्या में दलितों को ईसाई बनाया गया परन्तु ईसा के अनुयाई भी उन्हें उनकी वास्तविक समस्याओं का समाधान नहीं दे सके। उन्होंने मात्र उन्हीं लोगों की मदद की जो ईसाई बनने वाले थे या बन चुके थे। उनका मुख्य ध्येय अपना

व्यापार बढ़ाना और ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार करना ही था। दलितों के वास्तविक कल्याण या उत्थान से उनका कोई सरोकार नहीं था। जात-पांत, छुआछूत, अस्पृश्यता, आर्थिक शोषण, राजनैतिक दासता आदि बुराइयों ने अभी भी दलितों को अपने शिकंजे में जकड़ रखा था।

आधुनिक काल में पुनर्जागरण के दौर में ब्रह्म-समाज और आर्य-समाज सरीखे सामाजिक एवं आध्यात्मिक सुधार आंदोलन प्रभाव में आए। व्यक्तिगत स्वतंत्रता, परार्थ उपयोगितावाद, उदार मानवता तथा आडम्बर और विसंगतियों से रहित समाज इन आंदोलनों के आधार थे।[20] आर्य समाज ने दलितों की सामाजिक दशा सुधारने का काम भी अपने हाथों में लिया। इसी समय सक्रिय हुए प्रार्थना-समाज के प्रवर्तक रानाडे ने सभी वर्गों के लिए समान अधिकारों की माँग की।[21] परन्तु, इन सभी संस्थाओं के सुधारवादी दृष्टिकोण और प्रयास भी दलितों की दशा ठीक नहीं कर पाए। अधिकारों के नाम पर इन्हें कुछ भी प्राप्त नहीं था। हिन्दू (मुसलमान और ईसाई भी) अछूतों को अर्द्ध मानव, मनुष्यों से कम और पशुओं से बदतर समझते थे।[22] संक्षेप में सामाजिक मानवता, प्रेम और भाईचारे का नितान्त अभाव था। दलित और उच्च वर्ग के पारस्परिक सम्बन्ध पूरी तरह से बिगड़ चुके थे। अछूत, अछूत ही पैदा होते थे, इसी रूप में जीवित रहते थे और अछूत के रूप में ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते थे।

डॉ. अम्बेडकर के जन्म के समय बुराइयों, विकृतियों, विसंगतियों और जबर्दस्त वैमनस्य से युक्त ऐसी ही सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियां विद्यमान थीं। उनका जन्म 14 अप्रैल, 1891 ई. को महाराष्ट्र की एक अछूत महार जाति में हुआ था। यह जाति और इनका कुल-परिवार भी उसी दुर्भाग्य का शिकार था जैसा कि अन्य अछूत जातियां। अतएव, डॉ. अम्बेडकर जिस सामाजिक परिवेश में उत्पन्न हुए और बड़े हुए उस परिवेश और वातावरण का प्रभाव इनकी सोच, विचारों और चिंतन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। समाजशास्त्रियों का यह कथन डॉ. अम्बेडकर के सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन का आधार बना कि, 'मनुष्य चिन्तन करता है यह एक जैविक सत्य है, लेकिन उसके चिन्तन का विषय क्या है, यह एक सामाजिक तथ्य है।' नि:संदेह, डॉ. अम्बेडकर के समक्ष सामाजिक तथ्य के रूप में कुछ उपस्थित था तो वह विसंगतियों और वैषम्य से ग्रस्त सामाजिक-धार्मिक परिवेश था जिसमें दलित एक जर्जरित, जटिल, बोझिल और अपमान से त्रस्त जीवन जीने को विवश दिखाई दे रहा था। दलितोद्धार और दलितोत्थान के लिए एक सकारात्मक मुहीम छेड़े जाने की आवश्यकता थी, उनमें जागृति और चेतना का नव रक्त

संचरित किए जाने की आवश्यकता थी, उनमें उत्साह और दुस्साहस का श्वांस फूंकने की आवश्यकता थी और इसी के इर्द-गिर्द केन्द्रित था डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक-दर्शन और राजनीतिक चिन्तन।

डॉ. अम्बेडकर का यह दर्शन उनके द्वारा प्रवर्तित सामाजिक सुधारों, राजनैतिक चेतना तथा धार्मिक सुधारों एवं आंदोलन में स्पष्टत: झलकता हुआ दृष्टिगोचर होता है, जिनमें परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध हैं।

जहाँ तक उनके द्वारा प्रवर्तित सामाजिक सुधारों का प्रश्न है, डॉ. अम्बेडकर का जन्म हिन्दू समाज में हुआ था। अत: वह इस समाज की समस्त बुराइयों और विसंगतियों से भलीभांति परिचित थे। उन्होंने स्वयं को एक विरोधी-हिन्दू (Protestant Hindu) घोषित किया।[23] उन्होंने अछूतोद्धार के लिए एक क्रांतिकारी आंदोलन छेड़ दिया। उन्होंने हिन्दू समाज को आह्वान किया कि, हिन्दुओं को यह भलीभांति समझ लेना चाहिए कि जिस प्रकार मानव जीवन को चलाने के लिए नियमों की आवश्यकता है, उसी प्रकार उन्हें समय-समय पर परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तित करने की भी आवश्यकता है, अन्यथा मनुष्य का सामाजिक जीवन गतिहीन बन कर अनेक रोगों से ग्रस्त हो सकता है।[24] उन्होंने कहा कि बिना सामाजिक एकता एवं समानता के राजनैतिक स्वतंत्रता का कोई महत्त्व नहीं है।[25] उन्होंने हिन्दू समाज में मौलिक सुधारों की आवश्यकता को अपरिहार्य बताते हुए कहा कि बिना सामाजिक समता और भ्रातृत्व के स्वतंत्रता एक ढकोसला मात्र है। वे अपनी बात पर दृढ़ भी रहे।[26] यह सत्य भी था कि बिना आंतरिक स्वतंत्रता और सुधारों के बाह्य स्वतंत्रता अपूर्ण रह जाती। डॉ. अम्बेडकर को भारत की स्वतंत्रता के मार्ग में रोड़े अटकाने वाला बता कर उनका विरोध भी किया गया।[27] परन्तु, उन्होंने कहा कि मैं स्वतंत्रता का विरोधी नहीं हूँ, वरन् पददलितों को सशक्त बना कर देश को वह नैतिक बल प्रदान करना चाहता हूँ जो देश को स्वतंत्र बनाने के लिए अपरिहार्य है।[28] अर्थात् यह कहना अधिक सही होगा कि वे भारत की स्वतंत्रता के साथ-साथ अछूतों की स्वतंत्रता भी चाहते थे। यही उनकी दृष्टि में आंतरिक स्वतंत्रता थी, जिसकी नितान्त आवश्यकता थी।

सन् 1930 के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर के विचारों का दूसरा सोपान प्रारम्भ हुआ और उन्होंने अपने विचारों को देश की समसामयिक राजनीतिक परिस्थितियों के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया। समाज सुधार के साथ-साथ अब उन्होंने अपनी दृष्टि राजनैतिक चेतना पर भी केन्द्रित करनी प्रारम्भ की। इस हेतु उन्होंने आह्वान किया कि अछूतों को राजनैतिक अधिकार प्राप्त करने के लिए अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिए और भौतिक समृद्धि के

लिए संघर्ष भी करना चाहिए।[29] अछूतों को राजनैतिक दृष्टि से सशक्त बनाने के प्रयासों के अंतर्गत ही उन्होंने पृथक निर्वाचन प्रणाली की माँग रखी थी।[30] उन्होंने अछूतों के लिए पृथक-वासन (Separate Settlement) की माँग भी रखी जहाँ अछूत शांति से अपना जीवनयापन कर सकें। गांधीजी और उनके अनुयाइयों ने अम्बेडकर के दोनों सुझावों - पृथक निर्वाचन और पृथक वासन का खुलकर विरोध किया। उन्हें इससे हिन्दू समाज में एक बहुत बड़ी खाई उत्पन्न हो जाने का भय था। स्वयं गांधीजी ने कहा कि 'मैं डॉ. अम्बेडकर के सुझावों को अपनी जान की कीमत देकर भी नहीं मानूंगा।'[31] गांधीजी ने आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया और उनकी दशा अति गम्भीर हो गई। अंततोगत्वा, डॉ. अम्बेडकर ने गांधीजी की जान बचाने के लिए एक समझौता किया जिसे 'पूना पैक्ट' कहते हैं। अछूतों को कुछ सुरक्षित स्थान प्रदान किए गए और संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को ही स्वीकार करना पड़ा।[32] उस असफलता के पश्चात् डॉ. अम्बेडकर हिन्दू समाज के कट्टर विरोधी बन गए। कट्टर हिन्दुओं ने उनकी काफी खिलाफत की परन्तु, वे अछूतोद्धार में लगे रहे। कुछ समय पश्चात् उन्हें लगा कि मात्र अछूतों की वकालत करना ही ठीक नहीं, अत: उन्होंने सभी निम्न वर्गों और सर्वहारा वर्ग के कल्याण की ओर अपना ध्यान केन्द्रित किया। उन्होंने बौद्ध धर्म और दर्शन का गहन अध्ययन किया और उससे बहुत प्रभावित हुए, यही नहीं उन्होंने अपने जीवन के अंतिम दिन बौद्ध धर्म की शरण में अर्पित कर दिए।[33]

अपने अंतिम दिनों में तो उनकी यह धारणा बन गई थी कि मानव कल्याण, सामाजिक उत्थान एवं राजनीतिक चेतना के साथ ही साथ धार्मिक प्रेरणा से ही सम्भव हो सकता है। इसके लिए उन्होंने बौद्ध धर्म की शरण में जाने का आग्रह करना शुरू कर दिया। धार्मिक चेतना को उन्होंने व्यक्तिगत और सामाजिक उत्थान के लिए आवश्यक बताया। उनका सामाजिक दर्शन उनके जीवन के अंतिम दौर में बिल्कुल ही बदल गया। अब उन्होंने जीवन में धर्म की महत्ता को स्वीकारते हुए भौतिक उन्नति तथा आध्यात्मिक चेतना के बीच समन्वयवादी दृष्टिकोण अपनाया। उन्होंने कहा कि बुद्ध का धर्म ही सच्चा धर्म है और मैं उसके तीन सिद्धांत - ज्ञान (knowledge) सम्यक मार्ग (right path) और दया (compassion) के अनुसार अपना जीवनयापन करूंगा।[34]

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि स्वातंत्र्योत्तर भारत के समग्र राजनीतिक और सामाजिक जीवन को उद्वेलित और आंदोलित कर देने वाला डॉ. अम्बेडकर का सामाजिक दर्शन जहाँ समसामयिक सामाजिक, धार्मिक परिस्थितियों और परिवेश में व्याप्त बुराइयों, विकृतियों और विसंगतियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया व्यक्त करता एक व्यावहारिक

और यथार्थपरक दर्शन है वहीं वह दलितोद्धार के लिए छेड़ी गई जंग का बौद्धिक नेतृत्व भी करता है। राष्ट्र के सम्पूर्ण दलितों में चेतना जागृत करने में डॉ. अम्बेडकर के इस सामाजिक मानवतावादी समाज-दर्शन ने एक महती भूमिका का निर्वहन किया है। स्वातंत्र्योत्तर भारत के इतिहास में इसे एक युगप्रवर्तक समाज दर्शन के रूप में देखना न तो कोई अतिशयोक्ति होगी और न ही अतिरंजना ही।

संदर्भ

1. आर.एन. मुखर्जी, *ए हिस्ट्री ऑफ सोशल थॉट,* सरस्वती सदन मसूरी, 1964, पृ. 17
2. 'इन्टर-रिलेशन्स ऑफ कल्चर', *अमेरिकन जर्नल ऑफ साईकियाट्री,* वॉल्यूम-111, नं.-7, यूनेस्को प्रकाशन, 1955, पृ. 152
3. वही, पृ. 146-147
4. एस. राधाकृष्णन, *ईस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वैस्टर्न थॉट,* द्वितीय संस्करण, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, लंदन, 1940, पृ. 366
5. धनंजय कीर, *डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन,* पॉपुलर प्रकाशन, नई दिल्ली, 1954, पृ. 3
6. एस. राधाकृष्णन, *द हिन्दू व्यू ऑफ लाइफ,* द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1949, पृ. 3
7. एस. राधाकृष्णन, *रिलीजन एण्ड सोसायटी,* जॉर्ज एलन एण्ड अनविन लिमिटेड, लंदन, 1956, पृ. 132
8. बी.एन. पुरी, *इण्डियन हिस्ट्री - ए रिव्यू,* भारतीय विद्या भवन, बॉम्बे, 1960, पृ. 14
9. वही, पृ. 16
10. ई.जे. थॉमस, *द हिस्ट्री ऑफ बुद्धिस्ट थॉट,* रॉटलेज एण्ड कीगन पॉल लिमिटेड, लंदन, 1953, पृ. 14
11. वही, पृ. 110
12. बी.एन. पुरी, *इण्डियन हिस्ट्री - ए रिव्यू,* पृ. 73
13. मोहम्मद यासीन, *ए सोशल हिस्ट्री ऑफ इस्लामिक इण्डिया,* द अप्पर इण्डिया पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, लखनऊ, 1958

14. एफ.एस.सी. नोर्थोप, *द मीटिंग ऑफ ईस्ट एण्ड वैस्ट*, द मैकमिलन कम्पनी, न्यूयॉर्क, 1946, पृ. 411–14
15. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, *मध्यकालीन भारतीय संस्कृति*, आगरा, 1967, पृ. 47–65
16. रामानंद, कबीर, गुरू नानक, चैतन्य महाप्रभु, एकनाथ, तुकाराम, रविदास आदि
17. धनंजय कीर, *डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन*, पूर्व., पृ. 1
18. डी.पी. मुखर्जी, *मॉडर्न इण्डियन कल्चर*, हिन्द किताब्स लिमिटेड, बॉम्बे, 1947, पृ. 62
19. एफ.जी. थॉमस, *क्रिश्चियन एथिक्स एण्ड मॉडर्न फिलॉस्फी*, चार्ल्स स्क्रिब्नर्स सन्स, न्यूयॉर्क, 1955, पृ. 305
20. बी.जी. तिवाड़ी, 'सेक्युलिरिज्म एण्ड कॉग्नेट ट्रेन्ड्स इन इण्डियन एथिक्स', *आगरा यूनिवर्सिटी जर्नल ऑफ रिसर्च*, 1954, पृ. 82
21. बी.आर. अम्बेडकर, *रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना*, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, 2017, पृ. 37–40
22. धनंजय कीर, *डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन*, पूर्व., पृ. 1–2
23. बी.आर. अम्बेडकर, *व्हाट कांग्रेस एण्ड गांधी हैव डन टू द अनटचेबल्स*, ठक्कर एण्ड कम्पनी, बॉम्बे, 1945, पृ. 317
24. बी.आर. अम्बेडकर, *एनीहिलेशन ऑफ कास्ट*, लाहौर, 1936, पृ. 79–80
25. बी.आर. अम्बेडकर, *रानाडे, गांधी एण्ड जिन्ना*, पृ. 44–45
26. बी.आर. अम्बेडकर, *एनीहिलेशन ऑफ कास्ट*, पृ. 10
27. सी. राजगोपालाचारी, *अम्बेडकर रीफ्यूटेड*, 1946, पृ. 38–39
28. बी.आर. अम्बेडकर, *द इवोल्यूशन ऑफ प्रोविन्शियल फाईनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया*, पी.एस. किंग एण्ड सन्स, वेस्टमिंस्टर, 1925, पृ. 279–80
29. धनंजय कीर, *लाइफ एण्ड मिशन*, पूर्व., पृ. 210–11
30. वही, पृ. 211
31. बी.आर. अम्बेडकर, *मिस्टर गांधी एण्ड द इमेन्सीपेशन ऑफ द अनटचेबल्स*, भीम पत्रिका पब्लिकेशन्स, जलन्धर, 1943, पृ. 31–86
32. वही, पृ. 90–91

33. 14 अक्टूबर, सन् 1956 को नागपुर में डॉ. अम्बेडकर ने पाँच लाख लोगों के साथ हिन्दू धर्म का परित्याग कर बौद्ध धर्म अंगीकार किया, जो कि एक ऐतिहासिक घटना थी।

34. धनंजय कीर, *डॉ. अम्बेडकर: लाइफ एण्ड मिशन*, पूर्व., पृ. 497

पूर्व प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (इतिहास)
तथा डीन (समाज विज्ञान)
महाराजा गंगा सिंह विश्वविद्यालय
बीकानेर (राजस्थान)